**AMOGHVARTA**

**ISSN : 2583-3189**

# स्वामी विवेकानन्द और पश्चिमी सभ्यता

**ORIGINAL ARTICLE**

**Author**

**डॉ. संतोष रजक**
अतिथि व्याख्याता, इतिहास विभाग
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्टस एण्ड सांईस
पटना (P.P.U), बिहार, भारत

## शोध सार

*स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि भारत को पश्चिमी ज्ञान और तकनिक को अपनाना चाहिए, लेकिन उसे अपनी आध्यात्मिक और साहित्यक जड़ों को नही भूलना चाहिए वे भारतीय और पश्चिमी ज्ञान को मिलाकर एक नयी सभ्यता बनाने की कल्पना करते है। उन्होंने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से पश्चिमी दुनिया को भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता से परिचित कराया और पश्यिमी दुनिया को यह बताया कि भारत मे ज्ञान, दर्शन और अध्यात्मिकता का एक समृद्ध इतिहास है। वे एक ऐसी विश्व कि कल्पना करते थे जहाँ पूरब और पश्चिम के बीच समझ और सहयोग हो। स्वामी विवेकानन्द का पश्चिमी सभ्यता के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण था। वे पश्चिमी विज्ञान और तकनीक के पक्षधर थे, लेकिन साथ ही वे पश्चिमी जीवनशैली और मूल्यों कि कुछ नकारात्मक पहलुओं पर भी ध्यान देते थे। वे भारतीय आध्यात्म दर्शन और पश्चिमी ज्ञान को मिलाकर एक बेहतर दुनिया बनाना चाहते थे।*

## मुख्य शब्द

*अवधारणा, पराधीनता, आत्मगौरव, शंखनाद, आध्यात्मिकता, पाश्चात्य.*

---

समय सबसे गतिशील अवधारणा है। इसकी गतिशिलता के कारण ही बुद्ध को कहना पड़ा कि एक ही नदी मे कोई दुबारा नहीं उतर सकता क्योंकि इस बीच कितना पानी बह चुका होता है। इस दृष्टिकोण से डेढ़ सौ साल का वक्त कुछ कम नहीं होता। यह एक लंबा फैसला था लेकिन इस फासले के वावजूद यदि कोई शख्स जेहन में बचा हैं, तो निश्चित ही वह उस वक्त का नायक होता है। लेकिन कोइ भी नायक अपने समय में सिमटा नहीं होता हैं। उसका उद्‌बोधन आने वाले दिनों में युगों–युगों तक भ्रमित लोगों को रास्ता दिखा रहा होता है। स्वामी विवेकानन्द आज से डेढ़ सौ साल पहले पैदा हुए एक ऐसे ही नायक थे। जिन्होंने केवल भारतवर्ष ही नहीं बल्की पूरी दुनिया को मानवता का रास्ता दिखाया था और अभी दिखा रहे हैं अपने सिद्धांतों से। इस लिहाज से वे भारत ही नहीं वल्कि विश्व के महानगुरू हैं तभी तो रवीन्द्र नाथ टैगोर भारत को समझने के लिए स्वामी विवेकानन्द को जानने की सलाह देते है। डॉ. एल. बासम ने कहा है कि –'' नरेन्द्र नाथ दत्त, जो बाद मे स्वामी विवेकानन्द हुए उनके जन्म के सौ वर्ष बाद भी आज विश्व इतिहास की तुला पर उनके महत्व का मूल्यांकन कर पाना अत्यंत कठिन है।''[1] किसी पाश्चात्य इतिहासकार अथवा अधिकांश भारतीय इतिहासकारों के लिए भी यह कार्य उनके देंहावसान के समय जितना कठिन था, और उससे कही अधिक कठिन हो गया है क्योंकि तब से अब तक के अतंराल के वर्षो मे होने वाली अनेक विस्मयकारी एवं अप्रत्याशित घटनाओं से ऐसा संकेत मिलता है कि आनेवाली सदियों में विशेषकर

जहाँ तक एशिया का सवाल है, वे आधुनिक विश्व को गढ़ने वालो लोगो में अन्यंतम के रूप में याद किए जाते है और भारतीय धर्म के संम्पूर्ण इतिहास में वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तियों में एक के रूप में गिने जाते है।

इस गिनती की मुख्य वजह तो यह है कि उन्होंने सदियों से सोये भारत को झकझोंड़ कर जगाया। "विवेकानन्द का काल भारतीय गुलामी का काल था उस वक्त भारत पराधीनता की बेड़ियों मे जकड़ा हुआ था। अंग्रेज यहाँ के शासक थे इसलिए स्वाभाविक तौर पर वे यहां जनता पर अपनी श्रेष्ठता का भाव चस्पा रहे थे।"[2] इसी कारण यहा की जनता एक हीनता की भावना से ग्रसित हो गई। उसके मन में यह ख्याल बैठ गया था कि अंग्रेज और अंग्रेजियत बेहतर है और यह ख्याल साधारण जन के जेहन मे नही बैठा था, बल्कि पढ़ा–लिखा बौद्धिक तबका भी इसी हीन भावना का शिकार हो गया इसलिए यहां का शिक्षित वर्ग अपनी परंपरा को हेय दृष्टि से देखने लगा था और परंपरा की खिल्ली उड़ाता था। तब का भारतीय समुदाय युरोपीय के बौद्धिक हमले से ऐसा कुंठित हो गया था कि वह उसी को श्रेष्ठ मानता था जिसे पश्चिम वाले श्रेष्ठ कहते थे। उनकी गवाही के वगैर भारतवासी अपनी रीति–रिवाज, अपना धर्म दर्शन, अपनी परंपरा त्यौहार किसी भी चीज को बेहतर मानने को राजी नहीं थे।स्वामी विवेकानन्द के लिए यह स्थिती बेहद अपमान जनक थी इसीलिए सबसे पहले उन्होंने भारतीयों की इस हीनता ग्रंथियों पर चोंट किया उसे तोड़ा। इसके लिए उन्होंने अपनी परंपरा, सांस्कृतिक विरासत और दार्शनिक स्थापनाओं की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जिससे भारतीयों कि झुकी हुई रीढ़ तन कर सीधी हो गई, और वे आत्मगौरव की भावना से आह्लादित हो गए, और उनका मुख मंडल तेज से दमक उठा। ऐसा इसीलिए हो सका कि अपनी व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द ने केवल भारतीय धर्म और दर्शन को श्रेष्ठ बताया बल्कि यह भी कहा कि भारत के पास एक ऐसी आध्यात्मिक संपदा है जिसकी आवश्यकता पश्चिमी जगत को भी है और यह संपदा भारत के पास प्रचुरता में है इसीलिए वह पश्चिमी जगत को इसका दान कर सकता है। शिकागों विश्व धर्म सम्मेलन मे स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिया गया भाषण में उनकी अध्यात्मिक संपदा की श्रेष्ठता और प्रचुरता की घोषणा के पश्चात, वर्षों बाद 1943 मे मुद्रित उनके लिखे एक लेख से इसकी पुष्टि होती है। वे लिखते है कि –"तब से पचास वर्ष बीत चुके जब एक अज्ञात और विचित्र वेशधारी युवा भारतीय संयासी ने विश्व के सर्वाधिक प्रगतिशील लोगों से कांपनें वाला,इसाई मिशनरीयों के दिवालोक से भयभीत एक उल्लु के समान अपने रूढ़िवाद के कोटर मे रहने वाला एक अपमानित और भ्रष्ट विश्वास मात्र नहीं है"[3] उन्होंने साहस पुर्वक यह दावा किया कि हिन्दु धर्म के पास विश्व को देने के लिए एक संदेश है, जिसकी सभ्यता को नितांत आवश्यकता है और जिसकी उपेक्षा करने में जगत का अपना ही नुकसान है।

स्वामी विवेकानन्द ने यह बात उन्नीसवीं सदीं में कही थीं। 19वीं सदी भारतीय इतिहास में पुर्नजागरण काल के नाम से दर्ज है। पुर्नजागरण का शाब्दिक अर्थ फिर से जागना होता है। "भारतीय संदर्भ में यह जागना सदियों की गुलामी, प्रताड़ना, अपमान, हिंसा और लाचारगी से उभरने के लिए होने वाली कसमसाहट से है। इसी कसमसाहट के चलते 19वीं सदी में एक सांस्कृतिक आंदोलन का सूत्रपात हुआ, जिसके अगुआ राजा मोहन राय थें। उन्होंने इसके लिए ब्रह्म समाज नामक संस्था कि स्थापना किया जिसकी बागडोर उनके बाद महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर ने संभाली।"[4] आगे चलकर इस संस्था से केशव चन्द्र सेन भी जुड़ गए थे और उनके प्रयास से ही महाराष्ट्र मे प्रार्थना समाज की स्थापना हुई और जिसके कर्ता–धर्ता महादेव गोबिंद रानाडे थे। इसी तरह दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज और एनी बेसेंट ने थियोसोफिकल सोसाइिटी द्वारा उस आंदोलन को विकसित और विस्तारीत किया फिर रामकृष्ण परमहंस आये जिन्होंने अपनी अनुभूति के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि धर्म बौद्धिक अनुमान की दृष्टि नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव है। उन्होने अपने अनुभव से देश और दुनिया के समस्याओं का समाधान निकाला।" रामधारी सिंह दिनकर ने इस पर कहा है कि रामकृष्ण परमहंस के ज्ञान प्रकाश में स्वामी विवेकानन्द ने भारतवर्ष और समग्र विश्व कि समस्याओं पर विचार किया एवं उनके जो समाधान उन्होंने उपस्थित किए वे असल में रामकृष्ण के ही समाधान थे।"[5] रामकृष्ण और विवेकानन्द एक जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष है। रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानन्द उनकी व्याख्या बन कर आये। रामकृष्ण दर्शन थे, विवेकानन्द ने उनके क्रिया पक्ष का आख्यान किया। स्वामी निर्वेदानंन्द ने रामकृष्ण देव को हिन्दू धर्म की गंगा कहा, जो वैयक्तिक समाधि के कमंडल मे बंद श्री विवेकानन्द इस गंगा के भागीरथ बने और उन्होनें देवसरिता को रामकृष्ण के कमंडल से निकालकर संपूर्ण विश्व मे फैला दिए।

विवेकानन्द को ऐसा करने के लिए सामाजिक सुगबुगाहट की सख्त जमीन मिली थी इसी जमीन पर खड़े होकर अपनी ओज, वाणी और विचार का ऐसा शंखनाद किया कि समुचा भारत अपनी शिथिलता त्याग कर नयी ऊर्जा से युक्त हो गया और ऐसा इसलिए हुआ कि उस शंखनाद मे भारत को अपने नए भविष्य का नक्शा मिल गया था, अपनी नई मंजिल का पता मिल गया था, इसी अर्थ मे स्वामी विवेकानन्द नए युग का प्रवर्तक कहे जाते है।

स्वामी विवेकानन्द को नए युग का प्रवर्तक इस अर्थ में कहा जा सकता है कि धर्म और विज्ञान के सम्नवय की पुर्नजोर वकालत की। इस वकालत की पृष्ठभूमि भारत की दरिद्रता रही। अपने गुरू रामकृष्ण के मृत्यु के पश्चात् जब उनके कार्यो की पूरी जिम्मेवारी विवेकानन्द पर आ गई तो उनका ठीक से निर्वहन करने के लिए भारत का भ्रमण करना जरूरी समझा। इस भ्रमण के द्वारा वे भारत के समस्याओं को ठीक से समझ लेना चाहते थे। ''वे जानना चाहते थे कि आखिर भारतीय धर्म, अध्याय, संस्कृति, परंपरा और नैतिकता की समृद्ध विरासत होने के वावजूद भारत इतना अकिंचन क्यों बना हुआ है? क्यों उसका सर झुका रहता है, वह सम्मान और स्वाभिमान के साथ क्यों नहीं जी पाता है? इस प्रश्नों का उत्तर उन्हें गरीबी के रूप में मिला।''[6] उन्होनें देखा कि भारत कि बहुसंख्यक जनता निर्धन है। वह भूखी और फटेहाल है। उसे दो वक्त की रोटी, दो गज कपड़ा, और दो हाथ का छप्पर भी नहीं मिल पा रहा है। वह कुपोषण, अशिक्षा और बदहाली का शिकार है। यह स्थिती दयनीय और असहनीय थी। विवेकानन्द यह देखकर व्याकुल हो उठे। उन्हे समझते देर नहीं लगी कि भारत कि रीढ़ झुकी क्यों है? क्यों वह दीन–हीन बेबस लाचार बना हुआ है। इन सबके पीछे गरीबी और सिर्फ गरीबी थी इसीलिए उनके सामने यक्ष प्रश्न यह था कि इस गरीबी को कैसे दूर किया जाए? कौन सा जतन और कौन सा उपाय किया जाए कि भारत इस भयानक गरीबी से मुक्त हो सकें।

इसके लिए उन्हें जो सबसे संगत और समाधान पूर्वक उपाय लगा वह पश्चिम से धन लाना था। उन्होने जान लिया था कि यूरोप के पास प्रचुर धन संपदा है, भौतिक वस्तुओं का अंबार है। आर्थिक समृद्धि और दैहिक जरूरतों को मिटाने वाली सामग्री उसके पास प्रचुरता में है इसीलिए यदि वहाँ से कुछ धन–संपदा मिलेगा तो भारत की गरीबी दुर हो सकती है? लेकिन यह धन वे मुफ्त में नही चाहते थे, कोई उन्हें कुछ खैरात में दे यह उन्हें स्वीकार नहीं था इसीलिए वे याचक की तरह झोली फैलाकर कुछ मांगने के लिए वहां नहीं जाना चाहते थे। यदि वे हमें धन देते है तो हमें भी उन्हें कुछ देना चाहिए और चुँकि हमारे पास धर्म कि महान संपदा है इसीलिए उनके धन के बदले में हम उन्हें धर्म का दान देंगें। यह एक प्रकार का विनिमय होगा जिसमें लेन–देन वाला दोनों पक्ष में समानता जरूरी हो नहीं पाती।''पश्चिम वालो से केवल लेने के बदले भारत को उसे कुछ देना भी होगा और यह देना धर्म का ही हो सकता, क्योंकि यही भारत के पास प्रचुरता में है।''[7]

स्वामी विवेकानन्द यह दान इसलिए देना चाहते थे कि यूरोप धार्मिक रूप से अकिंचन है। उन्होंने अपनी गहन दृष्टि से यह देख लिया था कि जिस तरह भारत दैहिक स्तर पर दरिद्र है, उसी प्रकार यूरोप आत्मिक स्तर पर दरिद्र है। अतः दरिद्रता उसकी भी मिटनी चाहिए और आध्यात्मिक संपदा के नही होने के कारण ही पश्चिम इतना अशांत है। अब चूंकि पश्चिम भौतिक समृद्धि बहुत है आध्यात्मिक संपदा नहीं होने के कारण ही पश्चिम अशांत है। पश्चिम के पास भौतिक समृद्धि बहुत है यह समृद्धि विज्ञान द्वारा पैदा हूई है इसीलिए पश्चिम वाले विज्ञान के अलावा और किसी चीज की महत्ता स्वीकार नहीं करते है। वे विज्ञान को ही सर्वोपरी मान बैठे है। वो तो होने के लिए धर्म वहां भी है लेकिन वहां धर्म बाहरी कर्मकांड से ज्यादा गहरा नहीं जा पाया है जबकि वास्तविक धर्म आंतरिक बोध है, आत्मा की अनुभूति है, स्वंय का साक्षात्कार है। पश्चिम वालों ने यह बोध, यह अनुभूति यह साक्षात्कार प्राप्त नही किया है इसलिए वे आत्मिक स्तर पर खोखलें है, रिक्त है। यही रिक्तता यही खोखलापन उनमें अशांति पैदा करती है और उन्हें बेचैन बनाए रखती है। अतः इस बैचैनी को दूर कर शांति प्राप्त करने के लिए आत्मिक स्तर पर भरा होना जरूरी है और यह भराव आत्मबोध वाले धर्म से हो सकता है, जो कि भारत के पास है इसलिए यदि भारत का धर्म और पश्चिम के विज्ञान का समन्वय हो जाए तो भारत की गरीबी और यूरोप की अशांति दोनो दूर हो जाएगी इसलिए उन्होंनें धर्म और विज्ञान के मिलाने का मसौदा प्रस्तुत किया और यह यकिन भी जाहिर किया कि आने वाले दिनों में दोनों मिल पाएगें और मिल जायेंगें। इस संबंध में उन्होनें स्पष्ट रूप से कहा है कि –'' आज हम बुद्धिवादिता

के इस चमकते सूर्य को चाहते है जिसमें बुद्ध का हदय हो, आश्चर्यजनक, असीम प्रेम और करूणा का हदय। यह संगम हमें उच्चतम दर्शन प्रदान करेगा विज्ञान और धर्म मिलेंगें और हाथ मिलाएगें। कविता और दर्शन मित्र बनेंगें।''[8] यह भाविष्य का धर्म होगा यदि हम उसे ढ़ाल सके तो यह सभी कालों और सभी लोगों के लिए होगा। यह एक रास्ता है जो आधुनिक विज्ञान को स्वीकार होगा क्योकि यह स्थिति आ गई है। जिन दिनों विवेकानन्द ने यह बात कही वह एक शताब्दी पहले का काल था।''उन दिनों धर्म और विज्ञान कि ऐसी गलबहिंयां करने का ख्याल संभवतः किसी के जेहन मे नहीं आया था इसलिए धर्म और विज्ञान के समन्वय का यह प्रस्ताव शायद बिल्कुल नया प्रस्ताव था जो पूरी मानवता के हित मे था।''[9] इस प्रस्ताव के द्वारा विवेकानन्द एक ऐसे मनुष्य को निर्मित करना चाहते थे जो भौतिक और अध्यात्मिक दोनो दृष्टियों से समृद्ध हो। इसी समृद्धि से ऐसा संतुलित समाज विकसित होगा जिसमें भूख, गरीबी, गुलामी, शोषण, और वर्चस्व का कोई संजाल नहीं बन पाएगां। तभी पूरी दुनिया सुख–शांति और चैन से रह पाएगीं।

इस प्रकार यह सुनिश्चित हो जाता कि विवेकानन्द का योगदान द्विस्तरीय है। एक स्तर देश का है और दूसरा स्तर दुनिया का। देश के स्तर पर उन्होंने यहां की सदियों से सोई हुई चेतना को गहन खुमारी से जगा कर तरो ताजा कर दिया इतना ही नही उन्होंने यहा की गरीबी दूर करने का अथक प्रयास किए। इस प्रयास के तहत उन्होंने पश्चिम से विनिमय करने का सूत्र दिए। इसी सूत्र के आधार पर उन्होनें धर्म और विज्ञान के समन्वय का विचार भी प्रतिपादित किया। जो दुनिया के स्तर पर सारी मानवता के लिए कल्याणकारी है इसलिए विष्णु प्रभाकर का यह कहना सही है कि ''स्वामी विवेकानन्द की याद आते ही एक ऐसे तेजस्वी व्यक्ति का चित्र ऑखों में उभर जाता है जिसके शरीर पर वस्त्र तो हिंदू संयासी के है पर उसके अंतर में समूची मानवता के लिए दर्द भरा हुआ है। मनुष्य की जड़ता का नास करना ही उनका एकमात्र आर्दश है।''[10]

## निष्कर्ष

पश्चिम में अपने चार साल के प्रवास के दौरान विवेकानन्द ने अध्यात्मिक विचारों की सार्वभौमिकता के शानदार भारतीय विचार का प्रचार किया था। उनका मानना था कि अन्य सभी चीजों कि तरह आध्यत्मिकता और धर्म को भी वैज्ञानिक अन्वेंषण कसौटी पर खड़ा उतरना होगा। उन्होंने कहा है कि पूर्वी सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से बहुत पुरानी है इसीलिए पश्चिमी सभ्यता की तुलना में पूर्वी सभ्यता अधिक दयालू है। वे पश्चिमी जीवनशैली को भौतिकवाद और भोगवाद के प्रति अतिसंवेदनशील मानते थे लेकिन वे पश्चिमी विज्ञान और तकनीक को भारत के विकास के लिए आवश्यक मानते थें।

## संदर्भ सूची

1. विदेहात्मानंद, स्वामी (1986) *स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 60।
2. वही, पृ. 54।
3. ब्रम्हेशानंद, स्वामी (2016) *स्वामी विवेकानन्द स्वरूप और संदेश,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 23।
4. विवेकानन्द, स्वामी (2016) *मेरी जीवन गाथा,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 26।
5. दिनकर, रामधारी सिंह (1946) *संस्कृति के चार अध्याय,* साहित्य आकादमी नई दिल्ली पृ. 52।
6. विवेकानन्द, स्वामी (2013) *कर्म और उसका रहस्य,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 25।
7. विवेकानन्द, स्वामी (1988) *भारत का भविष्य,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 16।
8. मजूमदार, सत्येद्र नाथ (2004) *विवेकानन्द चरित,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 16।
9. विवेकानन्द, स्वामी (1938) *प्राच्य और प्राश्चात्य,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 41।
10. मजूमदार, सत्येद्र नाथ (2004) *विवेकानन्द चरित,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 43।

––==00==––